गुरु गोबिन्दसिंह

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

गुरु गोबिन्दसिंह

जन्म व प्रारम्भिक जीवन

गुरु गोबिन्दसिंह सिखों के दसवें धार्मिक गुरु, योद्धा और कवि थे। वे वीरता, शौर्य और पराक्रम के पर्याय एवं साहित्यिक चिंतक थे।

उनका जन्म 16 जनवरी, 1669 को पटना में हुआ। उनके पिता गुरु तेगबहादुर तथा माता का नाम गुजरी था। वे अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। उन्हें प्रारम्भ में गोबिन्दराय के नाम से पुकारा जाता था। मार्च 1672 में उनका परिवार पटना आया जहाँ गोबिन्दराय ने शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने पंजाबी, संस्कृत, फारसी, ऊर्दू, हिन्दी, ब्रज सहित अनेक भाषाओं का अध्ययन किया। 1675 में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् 1676 में वह 'गुरु' बनाये गये।

अपने पिता के बलिदान के समय गुरु पद पर आसीन गुरु गोबिन्दसिंह की आयु मात्र 9 वर्ष की थी। इसके बाद लगभग आठ वर्ष तक वे आनन्दपुर साहेब में रहे जहाँ उन्होंने शस्त्र और शास्त्र, दोनों की शिक्षा प्राप्त की। अपने शिष्यों की शिक्षा का प्रबन्ध किया। सुदूर प्रदेशों से आये कवियों को अपने यहाँ आश्रय दिया। दूर-दूर तक फैले हुए सिख समुदाय को 'हुक्मनामे' भेजकर उनसे धन और अस्त्र-शस्त्र का संग्रह किया। एक छोटी-सी सेना एकत्र की और उसे युद्धनीति में कुशल बनाया।

Scanned by CamScanner

विकट परिस्थितियाँ

जिन परिस्थितियों में गुरु नानक ने इस नये पंथ (सिख पंथ) की स्थापना कर समाज सुधार एवं एकात्मता, अखंडता, धर्म के प्रति आस्था की व्याख्या कर, समाज में एक क्रांति निर्माण करने का कार्य आरंभ किया, वह विपरीत परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना तो कर गया, परन्तु गुरु तेगबहादुर के बलिदान के बाद देश व पंथ-दोनों के सम्मुख अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। अब एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो त्याग की, बलिदान की पराकाष्ठा की माँग कर रहा था। गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व ही ऐसा था जो उस कसौटी पर शत-प्रतिशत खरा उतरा।

गुरु गोबिन्दसिंह का जन्म ऐसे समय हुआ जब अकबर द्वारा प्रस्थापित राजनीतिक शांति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। औरंगजेब की द्वेषपूर्ण नीतियों के कारण पंजाब और महाराष्ट्र में संघर्ष का सूत्रपात हो चुका था। वास्तव में औरंगजेब के शासनकाल में जिस धार्मिक असहिष्णुता का विस्फोट हुआ, उसका प्रारंभ शाहजहां के शासनकाल में हुआ था। 1632 में शाहजहां ने यह आदेश निकाला था कि नये हिन्दू मंदिर नहीं बनाये जायें, जो बन रहे हैं उन्हें तोड़ दिया जाये। गोहत्या पर जो नियम अकबर के समय बने थे, उनमें शिथिलता आ गई थी। परिणामत: मुगल सत्ता के प्रति विरोध बढ़ता जा रहा था। गुरु गोबिन्दसिंह उस समय 3 वर्ष के थे जब मथुरा के निकट जाटों ने जमींदार गोकुल के नेतृत्व में विद्रोह कर मुगल फौजदार और उसके सिपाहियों को मार डाला। यद्यपि इस विद्रोह को दबा दिया गया, परन्तु आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही। जब

Scanned by CamScanner

गोबिन्द 5 वर्ष के थे तो छत्रसाल औरंगजेब के विरुद्ध खड़े हो गये और अगले ही वर्ष नारनौल के सतनामी सम्प्रदाय के विद्रोह से मुगल सत्ता काँप गई थी। 13 वर्ष की आयु में गोबिन्दसिंह ने दुर्गादास और महाराणा राजसिंह की वीरगाथा सुनी।

बचपन की निर्भीकता

उनके बचपन की घटना है। औरंगजेब के अत्याचारों से दु:खी कश्मीर का ब्रह्मवृंद गुरु तेगबहादुर के पास पहुँचा था। उनकी वेदनापूर्ण व्यथा सुनकर गुरु तेगबहादुर गहरी सोच में पड़ गये। अपने पिता को चिन्तित देखकर बालक गोबिन्द से नहीं रहा गया। उन्होंने पिता से इसका कारण पूछा। जब पिता ने कहा कि किसी महान् पुरुष की बलि के बिना मार्ग नहीं निकल सकता तो गोबिन्द सिंह ने, जो उस समय मात्र नौ वर्ष के थे, तत्काल कहा–"आप से बढ़कर और कौन गौरवशाली पुरुष हो सकता है?" अपने पुत्र के निर्भीक, स्पष्ट वचन सुनकर गुरु तेगबहादुर का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। उन्होंने कहलवा भेजा, 'गुरु तेगबहादुर यदि धर्मांतरण कर लें, तो सारे ब्राह्मण तैयार हैं।' फिर दिल्ली में गुरु का अमर बलिदान इतिहास बन गया।

गुरु पद पर आने से पूर्व उनकी ऐसी दूरदृष्टि थी। अपने पिता को बलिदान के लिये प्रेरित करने वाले इस वीर बालक ने यही भाव अपने पूरे परिवार में इतनी गहराई तक रोपित किये थे कि उनके अपने दो किशोर पुत्र तो रणक्षेत्र में हँसते-हँसते कूद पड़े। छोटे दो अबोध शिशु भी दीवार में जीवित चिन दिये गये, परन्तु उनके मुँह से

Scanned by CamScanner

उफ् तक नहीं निकली। अपने पूरे परिवार का बलिदान कर समाज के सम्मुख, देश के सम्मुख उन्होंने एक आदर्श प्रस्तुत किया। चिड़ियों में भी बाज से टक्कर लेने का साहस व शक्ति उत्पन्न करने की घोषणा निरर्थक नहीं थी। उन्होंने उसे अपने जीवन में साकार कर दिखाया। यही नहीं, बैरागी बने तरुण में नया उत्साह और जीवन के प्रति उत्तम दृष्टि इतनी निर्माण की कि वह बंदा बैरागी परकीय सत्ता के लिये साक्षात् काल बना और देश के लिये जीवन अर्पण करने में ही उसने अपने जीवन की पूर्णता अनुभव की।

स्वामी विवेकानंद के ओजस्वी उद्‌गार

"स्मरण रहे, यदि तुम अपने देश का कल्याण चाहते हो तो तुम में से प्रत्येक को गुरु गोबिंदसिंह बनना होगा। भले ही तुम्हें अपने देशवासियों में सहस्त्रों दोष दिखाई दें, परन्तु ध्यान रखना कि उनमें हिन्दू रक्त है। वे तुम्हें हानि पहुँचाने के लिये चाहे सब कुछ करते हों, तब भी वे प्रथम देवता हैं जिनका तुम्हें पूजन करना है। यदि वे तुम्हें गाली दें, तब भी तुम्हें उनके लिये स्नेह की भाषा बोलनी है। यदि वे तुम्हें धक्का देकर बाहर कर दें, तब भी तुम कहीं दूर जाकर उस शक्तिशाली सिंह गोबिंदसिंह के समान मृत्यु की गोद में चुपचाप सो जाना। ऐसा ही व्यक्ति हिन्दू कहलाने का वास्तविक अधिकारी है, यही आदर्श सदैव हमारे सामने रहना चाहिये। आओ, हम अपने समस्त विवादों एवं आपसी कलह को समाप्त कर, स्नेह की इस भव्य-धारा को सर्वत्र प्रवाहित कर दें।"

"चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ,

Scanned by CamScanner

सवा लाख से एक लड़ाऊँ,
तभी गोबिंदसिंह नाम कहाऊँ।"

यह उक्ति जिनके लिये कही जाती है, वह गुरु गोबिन्दसिंह कितने प्रतापी थे, समाज के प्रति उनकी दृष्टि कितनी पैनी थी, यह स्वामी विवेकानंद के उक्त उद्‌गारों से स्पष्ट है।

"चिड़ियों से मैं बाज़ लड़ाऊँ" यानी साधारण चिड़ियों में भी इतनी शक्ति जागृत करने का आत्मविश्वास जिनमें था, वे थे दशम् गुरु गोबिन्दसिंह। गुरु नानक के साथ प्रारंभ हुई गुरु परम्परा, दशम् गुरु के साथ समाप्त हो गई। इसके बाद पवित्र ग्रंथ साहिब को ही गुरु मानकर चलने के उन्होंने निर्देश दिये और उसका पालन आज तक सम्पूर्ण निष्ठा से हो रहा है।

दुर्बल समाज

उस कालखण्ड में हिन्दुओं की स्थिति ऐसी थी कि जातपात के भेदभाव व आपसी कलह से वे दुर्बल हो चुके थे। वे आक्रमणकारियों के सामने असहाय और विवश हो जाते थे। जब आत्मरक्षा का कोई सशक्त उपाय नहीं मिला तो वे अलौकिक बातों में विश्वास करने लगे थे। पंजाब के अन्तिम हिन्दू सम्राट अनंगपाल के बाद गुरु नानक के समय तक साढ़े चार शताब्दियों में ऐसा कोई हिन्दू नाम सामने नहीं आया जो समाज में चेतना लाकर उसे शक्ति देने वाला हो। गुरु नानकदेव पहले पुरुष थे जिन्होंने पंजाब के उपेक्षित, पीड़ित व आत्मविस्मृत समाज को जगाया।

Scanned by CamScanner

जीवन का प्रथम युद्ध

अप्रैल 1689 में गुरु गोबिंन्द सिंह ने अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ा। उनका बढ़ता हुआ संगठन पहाड़ी राजाओं में डर पैदा कर रहा था। वे उन पर नियंत्रण रखना चाहते थे। निम्न कही जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने के लिए गुरु गोबिंन्दसिंह ने भरसक प्रयास किए। इससे परम्परागत उच्च जाति अहंकार से ग्रसित राजा रुष्ट हो गये थे। इसी स्थिति ने उन्हें गुरु गोबिन्दसिंह के विरुद्ध मोर्चा बनाने को प्रेरित किया।

सिख इतिहास के अनुसार, कलिहूर के राजा भीमचन्द, जिसके क्षेत्र में गुरु गोबिन्दसिंह अपने शक्तिकेन्द्र आनन्दपुर साहेब की स्थापना कर रहे थे, के पुत्र अजमेर चन्द का विवाह गढ़वाल के राजा फतेहशाह की पुत्री से निश्चित हुआ था। गुरु गोबिन्दसिंह इस समय पाँवटा नामक स्थान पर थे। इस विवाह के अवसर पर अनेक पहाड़ी राजा ससैन्य उपस्थित हुए। योजना यह थी कि विवाह के बाद गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण किया जाये। गुरुजी को इस योजना की जानकारी जैसे ही हुई, उन्होंने पाँवटा साहेब से 6 मील पर एक उपयुक्त स्थान भंगाणी में मोर्चे बाँध लिये। इस युद्ध में गुरु गोबिंदसिंह ने स्वयं भाग लिया।

पंजाब के सिंहौरा के फकीर सैयद बुद्धुशाह से गुरु तेगबहादुर के अच्छे संबंध थे। उनके आग्रह पर उन्होंने 500 पठानों को अपनी सेना में लिया। परन्तु इनके सरदार कालेखान को छोड़कर शेष सभी शत्रु से जा मिले। जब सैय्यद बुद्धुशाह को यह समाचार मिला तो वह

Scanned by CamScanner

अपने 700 शिष्यों और चारों पुत्रों को लेकर गुरु गोबिन्दसिंह की सहायता करने के लिए निकल पड़े। उनके अनेक शिष्य और दो पुत्र युद्ध में मारे गये। युद्ध के बाद गुरु गोबिन्दसिंह ने सैय्यद बुद्धुशाह को इस समयोचित सहायता के लिये सम्मानित किया। पहाड़ी राजाओं पर विजय प्राप्त कर गुरु गोबिन्दसिंह आनन्दपुर साहेब लौट गये। इसके बाद उन्होंने लोहगढ़, आनन्दगढ़, केशगढ़ और फतेहगढ़ दुर्ग बनवाये।

पराजित राजाओं ने गुरु गोबिन्दसिंह से संधि कर ली और उनका साथ देना स्वीकार कर लिया। उन्होंने औरंगज़ेब को टैक्स देना बन्द कर दिया। इस पर मुगल सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की सहायता से उन्होंने इस आक्रमणकारी सेना को परास्त कर दिया। इन राजाओं ने पुनः दुर्बलता का परिचय देते हुए मुगलों से संधि कर ली। औरंगजेब के निर्देश पर लाहौर के सूबेदार दिलावर खान की सेना उनके पुत्र रुस्तम खान के नेतृत्व में गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण करने हेतु बढ़ी। दोनों ओर सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार थीं परन्तु नदी में भारी बाढ़ आ जाने से मुगल सेना को लौटना पड़ा। इसके बाद हुसैन खाँ नामक सेनापति राजाओं को लूटने लगा। गुरु गोबिन्द सिंह की सेना ने हुसैन खाँ को भी पराजित किया।

औरंगजेब इस समय दक्षिण में था। पंजाब के समाचार उसे चिन्तित करने लगे। उसने अपने पुत्र मुअज्जम को युद्ध के लिए भेजा। उसकी सेना ने पहाड़ी राजाओं को बुरी तरह कुचल डाला परंतु आनन्दपुर फिर भी सुरक्षित रहा। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी रचना 'विचित्र नाटक' में इन सारी घटनाओं का उल्लेख किया है। मुगल

Scanned by CamScanner

शहजादे के वापस जाने के बाद कुछ काल शांतिमय रहा। गुरु गोबिन्दसिंह ने इस काल में अपनी साहित्यिक रचनाएँ लिखीं।

गुरु गोबिन्दसिंह यह जानते थे कि मुगल सत्ता से संघर्ष होना निश्चित है। अत: वे अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में लग गये। वे जानते थे कि समाज का वह वर्ग जो सुस्थिति में होता है कभी भी क्रांति का साथ नहीं देता क्योंकि उसे अपनी विशेष स्थिति को छिन जाने का भय रहता है।

बैसाखी का वह पर्व

बैसाखी का पर्व था। गुरुजी ने अपने हज़ारों शिष्यों के सम्मुख बोलते हुए अचानक नंगी तलवार लेकर प्रश्न किया- "है कोई आप में से ऐसा जो धर्म के लिये अपने प्राण दे दे?" यह प्रश्न सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। गुरु गोबिन्दसिंह ने देखा कि सन्नाटा बढ़ता जा रहा है। दूसरी बार, तीसरी बार उन्होंने वही प्रश्न दोहराया। लाहौर का एक खत्री दयाराम उठा और बोला– "मैं हूँ गुरुजी।" गुरु उसे अपने साथ अंदर ले गये। वहाँ पहले से कुछ बकरे बाँध रखे थे। गुरु ने एक बकरे का सिर काटकर रक्तरंजित तलवार उठाये पुन: सभा में प्रवेश किया। पुन: वही सवाल- "है कोई और जो धर्म के लिये अपने प्राण दे दे?" इस बार दिल्ली का एक जाट धर्मदास आगे बढ़ा। गुरु उसे भी अन्दर ले गये। रक्तरंजित तलवार लिए पुन: बाहर आकर वही प्रश्न। इस प्रकार तीन व्यक्ति और अंदर ले जाये गये-द्वारिका का धोबी मोहकचंद, जगन्नाथपुरी का रसोइया हिम्मत और बीदर का नाई साहबचन्द्र।

Scanned by CamScanner

पंज प्यारे

गुरु ने इन पाँचों को सुन्दर वस्त्र पहनाये और उन्हें 'पंज प्यारे' कहकर सम्बोधित किया। जब उन पाँचों को लेकर वे बाहर आये तो सभा स्तब्ध रह गई। बैठे हुए सभी लोग लज्जित हुए। इन पंज प्यारों में केवल एक खत्री था। शेष चारों तथाकथित 'निचले वर्ग' के थे। गुरु ने सर्वप्रथम उन्हें दीक्षित किया और स्वयं भी उनसे दीक्षा ली। उन्होंने 'खालसा' को 'गुरु' का स्थान दिया और 'गुरु' को 'खालसा' का। गुरु ने उनके साथ बैठकर भोजन किया। उन पाँचों को भी गुरु ने अपने समान ही अधिकार दिये। जो प्रतिज्ञाएँ उनसे कराईं, वे स्वयं भी कीं। इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने पूर्व की नौ पीढ़ियों के सिख समुदाय को 'खालसा' में परिवर्तित किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि ईश्वर के प्रति निश्चल प्रेम में ही जिसका तीर्थ, दान, दया, तप और संयम है, जिसके हृदय में पूर्ण ज्योति का प्रकाश है, वह पवित्र व्यक्ति ही 'खालसा' है। ऊँच-नीच, जात-पाँत का भेद नष्ट कर, सबके लिये उन्होंने समानता की घोषणा की। उन्होंने सबको आज्ञा दी कि अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग करें। इसी समय वह स्वयं गुरु गोबिन्दराय से गुरु गोबिन्द सिंह बने। वे निःसंदेह सामाजिक समरसता के महान सूत्रधार थे।

वाहेगुरु जी का खालसा

गुरुजी बाह्य क्रियाओं और चिह्नों की विस्मयकारी शक्ति को पहचानते थे। उनके द्वारा प्रारंभ किये गये दीक्षा संस्कार 'पहुल' का यही वास्तविक अर्थ है। 'पहुल' संस्कार में सभी व्यक्ति जिस जल

Scanned by CamScanner

को चखते हैं, उसे एक विशेष प्रक्रिया के बाद 'अमृत' पुकारा जाता है। उन्होंने एक नया जयघोष दिया–

वाहेगुरु जी दा खालसा,
श्री वाहेगुरु जी दी फतेह।
(खालसा ईश्वर का है और ईश्वर की विजय सुनिश्चित है)

उन्होंने प्रत्येक सिख के लिये पंच 'क' अर्थात 5 वस्तुओं – 'केश' 'कड़ा', 'कंघा' 'कच्छा' और 'कृपाण' को धारण करने का निर्देश दिया। इसके पीछे 'समर्पण', 'शुचित्व', 'देवभक्ति', 'शील' और 'शौर्य' का भाव था।

'खालसा' निर्माण की तीव्र प्रतिक्रिया होनी ही थी। 'पहुल' में दीक्षित सिख जब अपने अपने घरों को लौटे तो इस नये पंथ का प्रचार करने लगे। कहिलूर के राजा बुरी तरह घबरा गये। एक धार्मिक सम्प्रदाय को गुरु गोबिन्दसिंह ने पूर्णत: राजनीतिक बना दिया था। कहिलूर के राजा ने एक पत्र लिखकर गुरु से कहा कि वे आनन्दपुर साहेब छोड़कर कहीं और चले जायें परन्तु उन्होंने साफ शब्दों में इन्कार कर दिया।

पहाड़ी राजा पुन: एकत्र हुए। सन् 1700 में 20,000 सैनिकों के साथ उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण कर दिया। गुरु के पास मात्र 8,000 सैनिक थे। फिर भी बहादुरी से लड़ते हुए खालसा सेना विजयी हुई। उन्होंने रोपड़ तक शत्रु को खदेड़ दिया। निराश और हतोत्साहित राजाओं ने औरंगजेब के पास एक पत्र भेजा। इस पत्र में उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह की बढ़ती हुई शक्ति से उत्पन्न संकट एवं

Scanned by CamScanner

गुरु के राज-चिह्न धारण किये जाने का उल्लेख था। उन्होंने लिखा कि गुरु गोबिन्दसिंह स्वयं को 'सच्चा बादशाह' कहते हैं। इससे औरंगजेब का शासन भी संकट में पड़ जाएगा।

औरंगजेब ने इस पर तुरंत कार्यवाही की। उसने सरहिंद और लाहौर के सूबेदारों को गुरुजी पर आक्रमण करने के आदेश दिये। इस युद्ध में भी मुगल सेना बुरी तरह पराजित हुई।

चमकौर का युद्ध

पहाड़ी राजाओं की बेचैनी और बौखलाहट बढ़ रही थी। वे कभी गुरु से संधि की बात करते तो कभी मौका देखकर उन पर आक्रमण करते थे। उन्हीं दिनों सैयदबेग और अलिफ खाँ नामक दो मुगल सरदार लाहौर से दिल्ली की यात्रा पर थे। इन राजाओं ने दोनों सरदारों को दो हजार रुपये प्रतिदिन के मानदण्ड पर गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण करने के लिये तैयार किया। दोनों के पास 10 हजार सशस्त्र सैनिक थे। गुरु गोबिंदसिंह और मुगलों के बीच चमकौर के निकट युद्ध हुआ। सैयदबेग गुरुजी के व्यक्तित्व और वीरता से प्रभावित होकर उनके पक्ष में जा मिला। अपने साथी के इस कदम से निराश होकर अलिफ खाँ भी मैदान छोड़कर भाग गया।

आनंदपुर साहेब का घेराव

पहाड़ी राजाओं और अपने नामी सरदारों की पराजय से औरंगजेब बहुत क्रोधित हो उठा। उसने पुनः एक विशाल सेना भेजी जिसमें सरहिंद, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों के अतिरिक्त 22 पहाड़ी राजा भी अपनी सेना के साथ उसमें आ मिले। गुरु गोबिन्दसिंह भी अपनी

Scanned by CamScanner

शक्ति के अनुसार युद्ध के लिऐ तैयार थे। प्रारंभिक झड़पों में मुगल सैनिक खालसा सेना के आगे टिक नहीं पाये। परन्तु शीघ्र ही शत्रु की विशाल सेना ने आनंदपुर साहेब को चारों ओर से घेर लिया। आनंदपुर साहेब का बाहर से संबंध टूट गया। अनाज और पानी की भारी कमी होने लगी। भूख-प्यास से सैनिक तड़पने लगे। मुगल सेनापति और पहाड़ी राजा कुरान व गीता की सौगंध खाकर सन्देश भेजने लगे कि यदि वे दुर्ग छोड़ दें तो उन्हें सुरक्षित जाने दिया जायेगा। दुर्ग छोड़ने के लिए सैनिक आग्रह करने लगे तो गुरुजी ने कहा कि वे उन्हें छोड़ कर जा सकते हैं परन्तु वे लिखकर दे दें कि वे गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तोड़ रहे हैं। 40 सिखों ने यह लिखित में दे दिया और दुर्ग छोड़कर चले गये। दुर्ग का घेरा कड़ा होने लगा। आठ माह बीत चुके थे। अंत में गुरु गोबिन्दसिंह भी अपनी माता, पत्नियों और चारों पुत्रों अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतेह सिंह तथा बचे हुए साथियों सहित दुर्ग छोड़कर चले गये।

वह काल रात्रि

वह काल रात्रि थी 21 दिसंबर 1704 की। शत्रु सेना अपनी सौगंध को भुलाकर खालसा सेना पर टूट पड़ी। सरसा नदी के तट पर वर्षा और शीत में ही युद्ध छिड़ गया। अजीत सिंह (19 वर्ष) और जुझार सिंह (14 वर्ष) सहित 40 सिखों को लेकर गुरु गोबिन्दसिंह चमकौर की गढ़ी तक पहुँच गये परन्तु परिवार के शेष लोग बिछुड़ गये। उनके दोनों छोटे पुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह दादी गुजरी सहित किसी तरह उनके पुराने रसोईये गंगाराम के गाँव पहुँचे। परन्तु उसने विश्वासघात किया और बच्चों को सरहिंद के सूबेदार वजीर

Scanned by CamScanner

खान को सौंप दिया। वजीर खान ने 27 दिसंबर, 1704 को उन्हें जीवित दीवार में चिनवा दिया। माता गुजरी यह दु:ख सहन नहीं कर सकी और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

जब इन छोटे बच्चों से कहा गया कि यदि वे इस्लाम कबूल कर लेंगे तो उन्हें मुँह माँगा इनाम मिलेगा। उनका उत्तर था, "हमें अपना धर्म प्राणों से भी प्यारा है। हम उसे अन्तिम साँस तक नहीं छोड़ सकते। हम गुरु गोबिन्दसिंह के पुत्र हैं। हमारे दादा गुरु तेगबहादुर धर्म की रक्षा के लिये कुर्बान हो गये। हम अपना धर्म कभी नहीं छोड़ेंगे।"

सरहिंद के नवाब ने दोनों बच्चों को दीवार में जीवित चिनवा देने के लिए उन्हें मलेरकोटला के नवाब को सौंपना चाहा। मलेरकोटला के नवाब का भाई गुरु के साथ युद्ध में मारा गया था। सरहिंद के नवाब ने सोचा कि मलेरकोटला का नवाब बदला लेने के लिए यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेगा। परन्तु उसने यह कहते हुऐ साफ इन्कार कर दिया- "मेरा भाई युद्ध में मारा गया है। इन निर्दोष बालकों का इसमें क्या दोष है?"

कहते हैं जब दोनों नन्हें भाईयों के चारों ओर दीवार उठने लगी तो जोरावर सिंह की आँखों में आँसू आ गये। बड़े भाई की आँखों में आँसू देखकर फतेह सिंह से रहा नहीं गया। उसने कहा- "वीरजी, आपकी आँखों में आँसू? क्या बलिदान से डर गये?"

बड़े भाई ने खिलखिलाकर कहा-"तू बड़ा भोला है। मौत से मैं नहीं डरता। मौत मुझसे डरती है। इसी लिये तेरी ओर पहले बढ़ रही

Scanned by CamScanner

है। मुझे दु:ख इसी बात का है कि तू मुझसे छोटा है पर बलिदान होने का अवसर तुझे पहले मिल रहा है।"

विश्व के इतिहास में ऐसी निर्मम हत्या और मानवीय क्रूरता का और कोई उदाहरण नहीं मिलेगा। इतने छोटे बच्चों का धर्म के लिये बलिदान का भी ऐसा श्रेष्ठ उदाहरण अनोखा था।

गुरु गोबिन्द सिंह की दोनों पत्नियाँ सुन्दरी और साहिब देवी भाई मणिसिंह के साथ दिल्ली पहुँच गयीं। गुरु गोबिन्दसिंह ने चमकौर की गढ़ी में शरण ली, परन्तु चालीस साथियों के बल पर गढ़ी में सुरक्षा असंभव थी। उनके दोनों पुत्रों ने वीरतापूर्वक अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। अपने बचे हुए तीन साथियों को लेकर गुरु ने गढ़ी छोड़ दी। वे अलग-अलग दिशाओं में चले गये। माछीवाड़ा के काँटो भरे जंगल में नंगे पैर घूमते हुए वे आक के पत्तों से भूख शांत करते भटकते रहे। एक दिन ऐसी पीड़ायुक्त स्थिति में वे सोये हुये थे कि नबी खाँ और गनी खाँ नामक दो पठानों की उन पर नजर पड़ी। दोनों पठान गुरुजी के प्रति श्रद्धा रखते थे। उन्होंने कई बार मध्य एशिया से घोड़े लाकर उन्हें बेचे थे। वे जानते थे कि मुगल सेना इनके पीछे पड़ी है। दोनों ने स्वयं के लिये खतरा होने पर भी गुरु की रक्षा करने का निश्चय किया। उन्हें मुसलमान फकीरों जैसे नीले वस्त्र पहनाये। 'उच्च का पीर' घोषित कर वे उन्हें एक पालकी में ले चले। 'उच्च' के दो अर्थ हैं- एक 'ऊँचा' और दूसरा मुलतान के निकट मुसलमानों का एक पवित्र स्थान। रास्ते में मुगल सैनिकों को उन पर सन्देह हुआ। पूछताछ व जाँच के लिये काजी पीर मुहम्मद को बुलवाया गया। संयोग से यह काजी गुरु गोबिन्दसिंह को उनके

Scanned by CamScanner

बाल्यकाल में फारसी पढ़ाने आते थे। काजी ने स्थिति सम्भाल ली और मुगल सैनिक चले गये। कुछ दिनों बाद गुरुजी को अपने दोनों छोटे पुत्रों के बलिदान का दुःखद समाचार मिला।

धीरे-धीरे उनके अन्य साथी भी उनसे मिलते गये और पुनः शक्ति का संगठन किया जाने लगा। सरहिंद का सूबेदार वजीरखान इनकी खोज में था। आखिर खिंडराना (मुक्तसर) में उससे मुठभेड़ हो गई। इस युद्ध में वजीरखान की सेना की पराजय हुई।

चालीस मुक्ते

इस युद्ध की विशेषता उन चालीस सिखों का अद्‌भुत पराक्रम था, जो गुरुजी को, गुरु-शिष्य का नाता तोड़कर, उन्हें छोड़कर आनंदपुर साहेब से निकल गये थे। इस युद्ध में उनकी वीरता अतुलनीय थी। अपने प्राण देकर उन्होंने अपने पिछले कृत्य के लिए प्रायश्चित्त भी किया। तब से सिखों की दैनिक प्रार्थना में 'चालीस मुक्ते' कहकर उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। खिंडराना को इसी युद्ध की स्मृति में 'मुक्तसर' कहा गया। प्रतिवर्ष माघ में यहाँ इसकी स्मृति में एक मेला भी लगता है। यहाँ से गुरु गोबिन्दसिंह अपने एक मित्र डल्ला के यहाँ तलवंडी साबू (दमदमा) पहुँचे। सामरिक दृष्टि से यह स्थान अत्यंत उपयुक्त था। पंजाब के बहुत से पुराने घराने तथा राजवंश गुरुजी के हाथों से पहुल लेकर 'खालसा पंथ' में आये।

गुरुजी ने यहाँ रहते हुए 'गुरु ग्रंथसाहिब' को पुनः सम्पादित किया। धीरे-धीरे यह स्थान अध्ययन का केन्द्र बना और 'सिखों की

Scanned by CamScanner

काशी' के रूप में जाना गया। इतिहासकारों के अनुसार यहाँ औरंगजेब ने गुरुजी को प्रत्यक्ष भेंट के लिये बुलाया था। उसके उत्तर में लिखे पत्र में गुरुजी ने औरंगजेब के विश्वासघाती स्वरूप का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत किया था। औरंगजेब ने तत्काल आज्ञा दी कि गुरु गोबिन्दसिंह को बिना कोई कष्ट दिये सम्मानपूर्वक बादशाह के पास लाया जाये। औरंगजेब उस समय अहमद नगर में था। अक्टूबर 1706 में गुरुजी ने राजस्थान होते हुए दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। अनेक राजपूत राजा उनके स्वागत के लिये आगे आए। इसी बीच 20 फरवरी 1706 को जब उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला तो गुरुजी दिल्ली चले गये। उनकी दोनों पत्नियाँ भी वहीं थीं। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्र गद्दी के लिये आपस में लड़ने लगे। इस संघर्ष में शहजादा मुअज्जम गुरुजी का आशीर्वाद पाने के लिये उनके पास पहुँचा। बाद में मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। कुछ दिनों बाद उसने गुरुजी को आमंत्रित किया और उनका भरपूर सम्मान किया। बहादुरशाह उन्हें 'दरवेश' (संत) के रूप में देखता था। गुरुजी एक मित्र के रूप में उसकी सेना के साथ दक्षिण गये। बहादुरशाह की सेना कामबख्श (बहादुरशाह के भाई) के विद्रोह को दबाने के लिए आगे बढ़ी, परन्तु गुरुजी गोदावरी के किनारे नांदेड़ में रुक गये।

बन्दा बैरागी (माधोदास) से भेंट

कहते हैं, गुरुजी की भेंट उज्जैन में एक दाऊदपंथी गुरु नारायणदास से हुई थी। उन्होंने बताया कि 'नावेर में एक बैरागी महन्त है जो अद्वितीय है। यह पुरुष देखने योग्य है।'

Scanned by CamScanner

उसी बैरागी माधोदास से गुरु गोबिन्दसिंह की भेट नांदेड़ में हुई। जब गुरुजी उसके डेरे पर गये तो माधोदास उस समय डेरे में नहीं थे। गुरु उसकी गद्दी पर बैठ गये। गुरु को अपनी गद्दी से उतारने के लिये माधोदास ने मंत्रशक्ति का प्रयोग किया। परन्तु सफलता नहीं मिली। गुरु ने माधोदास को कर्म का सन्देश दिया व देश की दारुण स्थिति का चित्र उनके सम्मुख खींचा। गुरुजी का बैरागी पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह स्वयं को गुरु का 'बन्दा' अथवा गुलाम कहने लगा। माधोदास बैरागी अब बन्दा बैरागी बना और अपना सारा जीवन उसने गुरुजी को समर्पित कर दिया। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में बन्दा बैरागी को पंजाब भेजा।

नांदेड़ में मृत्यु

नांदेड़ पहुँचने के एक माह के अन्दर ही (7 अक्टूबर, 1708) को गुरु गोबिन्दसिंह का देहान्त हो गया। वह उस समय विश्राम कर रहे थे। एक पठान ने घात लगाकर उन पर छूरे से आक्रमण कर दिया। पास में कोई रक्षक नहीं था। गुरुजी ने पास ही रखी तलवार से उस हत्यारे को मार गिराया। गुरुजी की आवाज पर कुछ शिष्य दौड़े आये। उन्होंने उस पठान के दो और साथी, जो बाहर थे, उन्हें पकड़कर मार डाला। गुरुजी के घाव का उपचार किया गया परन्तु 3-4 दिन बाद अपनी अन्तिम घड़ी को सामने देख उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाया और 'वाहेगुरु जी दी फ़तेह' कहते हुए अपने प्राण त्याग दिये। तब उनकी आयु केवल 42 वर्ष की थी।

नान्देड़ में उनकी स्मृति में बना गुरुद्वारा 'हजूर साहब' के नाम से एक तीर्थस्थान बन गया है।

Scanned by CamScanner

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं 'कि जब-जब धर्म की हानि होती है, मैं अवतार लेता हूँ।' गुरु ने भी कहा था कि मेरा जन्म 'धर्म चलावन संत उबारन' के लिये ही हुआ था। संतों की रक्षा और दुष्टों के नाश से ही धर्म टिक सकता है व उसकी रक्षा हो सकती है - यह जानकर ही उन्होंने सशस्त्र संघर्ष किया।

'तेग' की जय हो

गुरुजी एक महान प्रेरक व मार्गदर्शक थे। उनका जीवन एक पीड़ित, दलित और आत्मविस्मृत समाज में आत्मविश्वास और साहस निर्माण करने में बीता। डॉ. नारंग के शब्दों में कृपाण और बन्दूक से दूर रहने वाले लोग भी उनके सम्पर्क में आने से सशक्त वीर बन गये। समाज के निर्बल व असहाय लोगों में भी उन्होंने आत्म-विश्वास व शौर्य जैसे गुणों का संचार किया। अपने साहित्य में उन्होंने परमात्मा का स्मरण विविध प्रकार से किया है, पर 'काल' नाम उन्हें सर्वाधिक प्रिय है।

उनका संदेश था -

"संतों के सुख का, दुष्टों के दलन का, संसार की स्थिति का, सृष्टि के उद्धार का और मेरी प्रतिज्ञा के पालन का एक मात्र साधन 'तेग' ही है, उसी की जय हो।"

वीर-रस के कवि

उनकी दृष्टि में शस्त्र भी, शस्त्रधारी 'काल' के समान एक रूप है, निर्विकार है-

Scanned by CamScanner

नमो खड्ग खण्डं कृपाणं कटारं।
सदा एकरुपं सदा निर्विकारम्। (द.ग्र. पृष्ठ 45)

हिन्दी के वीर काव्य में चन्द बरदाई और भूषण का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। भूषण तो वीर रस में अग्रणी हैं। गुरु गोबिन्दसिंह वीर रस के कवि हैं, एक ऐसे कवि, जिन्होंने 'धर्मयुद्ध' के लिये ही काव्य की रचना की। अपनी एक रचना 'चंडीचरित' (प्रथम) में उन्होंने वीरगति प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की है-

देह शिवा बर मोह इहै
सुभ करमन ते कबहूं न टरैं।
न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं
निसचै करि अपनी जीत करौं।।
अरु सिखहौं अपने ही मन को
इह लालच हौं गुन तउ उचरौं।
जब आउ की अउध निदान बनै
अति ही रन में तब जूझ मरौं।

डॉ. महीप सिंह ने गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व पर लिखा है कि-'यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने अपना युद्धाक्रोश मुसलमानों के विरुद्ध नहीं, तुर्कों के विरुद्ध प्रदर्शित किया है। उन्होंने 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग किया है। यही विशेषता भूषण में भी मिलती है। उस युग में तुर्क (म्लेच्छ) शब्द उस राजनीतिक शक्ति का परिचायक था जिसके विरुद्ध छत्रपति शिवाजी और गुरु गोबिन्दसिंह को युद्ध करना पड़ा।'

Scanned by CamScanner

योद्धा भक्त

'गुरु गोबिन्दसिंह ने सभी हिन्दू शक्तियों का संगठन व समन्वय किया। शैव, शाक्त, वैष्णव साहित्य का भाषानुवाद इसका प्रमाण है। गुरु गोबिन्दसिंह का जीवन अत्यंत साहसी, धार्मिक, शक्तिशाली व गौरवमयी था। वे एक भक्त थे परन्तु साथ ही अन्याय के विरुद्ध जनान्दोलन के नेता भी थे। सूर, तुलसी, कबीर, नानक सभी भक्त हैं, परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह योद्धा-भक्त हैं। साथ ही मानवमात्र की समता, समरसता और सभी में एक ज्योति की प्रतिष्ठा में उनकी दृढ़ आस्था है।'

सवा लाख से एक लड़ाऊँ

गुरु गोबिन्दसिंह का काल वह कालखण्ड था जब भारत व हिन्दू धर्म गंभीर संकट में था। मुगल शासन अपनी क्रूरता, कुशासन व दुष्टता से जनता पर अत्याचार कर रहा था। ऐसे समय में उन्हें औरंगजेब जैसा निर्दयी व हिन्दू-विरोधी नेता मिल गया जिसने अपनी सारी शक्ति इस देश की संस्कृति, श्रद्धाकेन्द्र, धार्मिक विश्वासों को नष्ट करने में लगा दी। इस विकट समय में समाज को जागृत करना आवश्यक था। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने संगठन को उस प्रदेश में स्थापित किया जो तत्कालीन विदेशी शासन में जकड़ा हुआ था। इसी कारण भारतीय इतिहास में उनका स्थान अत्यंत विशिष्ट महापुरुषों में माना जाता है।

Scanned by CamScanner